जरा याद करें सूर्योदय के पीछे खड़े किसानों को भी

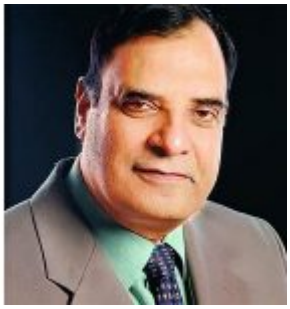

किसानों के लिए भारत की जनता , सरकार ही नहीं दुनिया के कुछ अन्य देशों से भी समर्थन सहानुभूति की आवाज उठ रही है। शायद ही कोई गांव या महानगर नहीं होगा , जो सुबह शाम चाय पिये बिना आगे बढ़ता हो। ख़बरों से अधिक टी वी चैनलों अथवा फिल्मों में सुदूर क्षेत्रों में चाय के खेतों (शान के लिए बागान) की लहलहाती हरी पत्तियों और खेतीहर सुन्दर महिलाओं और युवाओं को देखकर गीत संगीत बजने लगता है। मन प्रसन्न हो जाता है। लेकिन क्या आपको यह जानकारी है कि क्रांतिकारी बंगाल में देश के कुल चाय उत्पादन का अस्सी प्रतिशत चाय पैदा करने वाले लोगों को ममता सरकार या कम्युनिस्ट सरकारों ने अधिकृत रूप से ' किसान " का दर्जा नहीं दिया है। उन्हें चाय उत्पादक कहकर उन्हें चाय के उद्योग से जुड़ा कहकर उन्हें देश के अन्य सामान्य किसानों की तरह छह हजार रुपयों की सहायता राशि या अन्य कोई सहायता नहीं दी जाती है। पराकाष्ठा यह है कि दार्जिलिंग क्षेत्र में सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त क्षेत्र के अलावा बहुत कम जमीन पर चाय पैदा करने वालों को " दार्जिलिंग " चाय लिखकर बेचने की अनुमति नहीं है।

भारत की विविधता , संस्कृति पर हम सब गौरव करते हैं और विरोधाभास पर दर्द भी महसूस करते हैं। विश्व के सबसे बड़े महान लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और राजनीतिक दलों अथवा किसान या श्रमिक अत:वा स्वयंसेवी संगठनों की संख्या दयनीय के किसी भी देश से अधिक हैं। फिर भी आजादी के 73 साल बाद भी ब्रिटिश राज जैसे कानून और कम्पनियाँ चल रही हैं। कभी दुश्मन बने ब्रिटिश राजा रानी या प्रधान मंत्री अब मित्र भी हो गए हैं। उनके देश में हमारे दसियों नेता और मंत्री भी हो गए हैं और वहां कई नियम कानून बदल गए , लेकिन कभी उनके सहयोग से बनी चाय कंपनियों के नियम कानून अंग्रेजी के साथ बांग्ला और हिंदी या असमियां में भले अनुदित हो गए हैं , लेकिन छोटे किसानों के हितों के लिए अब तक नहीं बदले हैं।

सूर्योदय तो पूर्वोत्तर से होता है। हक़ की आवाज सबसे अधिक वहीँ से गूंजती रही है। वैसे बंगाल , असम , त्रिपुरा से लेकर सुदूर दक्षिण केरल , तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश में भी चाय की खेती हो रही है। पिछले करीब दस वर्षों से बिहार के पूर्वांचल किशनगंज क्षेत्र में भी चाय की खेती तेजी से बढ़ी है। बंगाल में 2001 में करीब 8 हजार छोटे किसान (चाय उत्पादक) थे , जो अब बढ़कर लगभग 22 हजार हो गए हैं। मशहूर दार्जिलिंग है , लेकिन चाय का अस्सी प्रतिशत उत्पादन जलपाईगुड़ी के खेतीहर मजदूर कर रहे हैं।

बंगाल और असम में सत्तर साल तक तो अधिकांश चाय उत्पादक किसानों को खेत पर हक़ के सरकारी दस्तावेज नहीं दिए गए थे। उन्हें कंपनियों का मुलाजिम , मजदूर ही समझा जाता था। पिछले दो तीन वर्षों में कागज पत्र मिलने शुरू हुए हैं। अंग्रेज चले गए , लेकिन सरकारी चाय बोर्ड केवल कंपनियों को ही मान्यता दते हैं। जो किसान दो हेक्टर से कम जमीन पर चाय की खेती करते हैं , उन्हें तो चाय उत्पादक सरकारी बोर्ड कोई छूट सहायता के योग्य भी नहीं मानता है। चाय बोअर्ध्द कंपनियों से जुड़े उत्पादकों को चाय पत्ती संग्रह , तराजू मशीन , बैग , भंडारण ,के लिए सब्सिडी उद्योग के नाते देता है। यही नहीं परिवहन के लिए अलग से पचास प्रतिशत देता है। लेकिन बेचारे हजारों छोटे किसानों के लिए अब तक कहीं कोई आवाज नहीं उठाता। उन्हें तो नो ऑब्जेक्शन (कोई आपत्ति नहीं यानी स्वीकृति) का अधिकृत कागज भी बेचने के लिए नहीं मिलता।

सरकारी रिकार्ड के अनुसार 2019 में भारत में करीब 1340 मिलियन चाय के उत्पादन का करीब पचास प्रतिशत छोटे उत्पादकों द्वारा होता है। दुनिया भर में भारतीय चाय का निर्यात भी होता है।दार्जिलिंग में केवल 87 चाय बागान को सरकारी बोर्ड की मान्यता है। दूसरी तरफ बेंगलूर से नौकरी छोड़कर वहां चाय की खेती के साथ उसकी बिक्री के लिए एक करोड़ का बैंक कर्ज लेकर फैक्ट्री लगाने पर या छोटे किसानों द्वारा मिलकर बनाई गई सोसायटी की फैक्ट्री को भी सरकारी बोर्ड सहयता देने को तैयार नहीं है। सवाल यह है कि साधन संपन्न पंजाब हरियाणा या महाराष्ट्र , कर्णाटक के किसानों के लिए आवाज उठा रहे नेता और संगठन ऐसे छोटे किसानों के दु:ख दर्द के लिए आवाज क्यों नहीं उठाते हैं ?

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार व राजनीतिक विश्लेषक हैं एव कई प्रमुख समाचार पत्रों व पत्रिकाओं के संपादक रह चुके हैं)